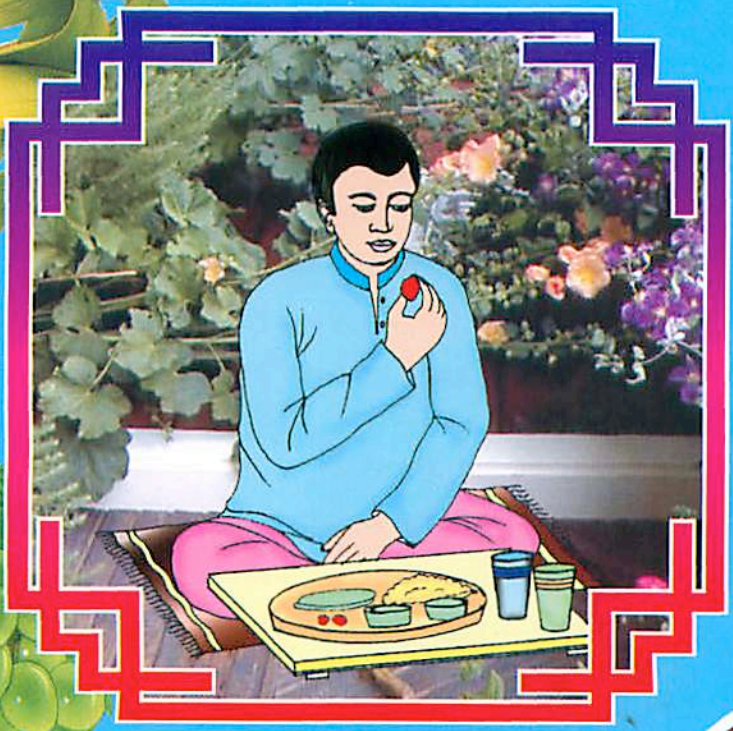

शाकाहार

जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों में भी, ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यानमें।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हो व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार है॥
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है॥

जिनके विमल उपदेश में सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है॥
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है॥

आतम बने परमातमा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में॥

— डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में

लेखक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डी.-लिट.

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

हिन्दी :

प्रथम बाईस संस्करण	:	2 लाख 41 हजार 200
(28 मार्च 1991 से अद्यतन)		
तेइसवाँ संस्करण	:	2 हजार
(25 दिसम्बर, 2009)		
योग	:	2 लाख 43 हजार 200
गुजराती : सात संस्करण	:	41 हजार
(अगस्त 92 से अद्यतन)		
मराठी : चार संस्करण	:	16 हजार
(20 दिसम्बर 92 से 15 अगस्त 2006)		
अंग्रेजी : दो संस्करण	:	10 हजार
(2 अक्टूबर 92 से 26 जनवरी 94)		
महायोग	:	3 लाख 10 हजार 200

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड,
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय

(तेइसवाँ संस्करण)

'शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में' का यह तेइसवाँ संस्करण प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त गौरव का अनुभव कर रहे हैं। हिन्दी में अब तक बाईस संस्करणों के माध्यम से 2 लाख 41 हजार 200 प्रतियाँ, गुजराती में सात संस्करणों के माध्यम से 41 हजार, मराठी में चार संस्करणों के माध्यम से 16 हजार तथा अंग्रेजी में दो संस्करण के माध्यम से 10 हजार – इसप्रकार चारों भाषाओं में कुल 3 लाख 08 हजार 200 प्रतियों की बिक्री अपने आप में गौरवपूर्ण है।

वर्ष 1991 में जैनसमाज की प्रमुख सामाजिक संस्थाओं ने उस वर्ष को शाकाहार वर्ष के रूप में घोषित कर अनेक कार्यक्रमों का संचालन किया था। अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने भी 'शाकाहार रथ' का प्रवर्तन कर देश भर में शाकाहार का अलख जगाया और शाकाहार-श्रावकाचार वर्ष मनाया। 'शाकाहार रथ' के प्रवर्तन हेतु प्रचार-प्रसार की दृष्टि से फैडरेशन के पदाधिकारियों ने डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल से विशेष अनुग्रहपूर्वक प्रस्तुत कृति का निर्माण कराया; फलतः तब से आजतक इस लघु कृति के माध्यम से शाकाहार का जन-जन में प्रचार-प्रसार हो रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन हेतु डॉ. भारिल्लजी का जितना उपकार माना जाए कम है। उन्होंने अत्यन्त सरल व सरस शैली में 74 कृतियों का सृजन कर उसे सस्ती दरों पर सामान्य जन को उपलब्ध कराया है। वे दीर्घजीवी हों तथा लेखन व प्रवचनों के माध्यम से समाज को दिशा देते रहें, ऐसी कामना है।

साथ ही प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल को धन्यवाद देना चाहेंगे, जिन्होंने प्रकाशन का दायित्व बखूबी निभाया है।

आप सभी इस कृति के माध्यम से स्वयं के जीवन को सदाचारी और शाकाहारी बनाकर, बनाये रखकर अनन्त सुख एवं शान्ति प्राप्त करें – ऐसी पवित्र भावना है।

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

महामंत्री, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

1.	श्री जयन्तीलाल रतनलालजी जैन, नौगामा	300.00
2.	श्री मानिकचन्द जैन, एड पैन वाले, मलाड़ मुम्बई	251.00
3.	श्री बाबूलाल सुभाषचन्दजी जैन, अमान	251.00
4.	श्री सत्येन्द्रजी जैन, दिल्ली	251.00
5.	श्री सुकमाल कुमारजी जैन, दिल्ली	251.00
6.	श्री अभिनन्दनकुमारजी जैन, रांची, जबलपुर	251.00
7.	श्री मानिकचन्दजी बंसल, केशोरायपाटन	250.00
8.	श्रीमती धनवंती भगवतीलालजी संघवी, इन्दौर	201.00
9.	पं. श्री सुशीलकुमारजी जैन, राधोगढ़वाले	200.00
10.	श्रीमती शकुन्तलादेवी छाजेड़, विजयनगर	200.00
11.	श्रीमती अंजनादेवी कासलीवाल, कोलकाता	200.00
12.	श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गौहाटी	101.00
	कुल राशि	**2,707.00**

शाकाहार | *जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में*

दिगम्बर जैन समाज की सभी सामाजिक संस्थाओं ने मिलकर इस वर्ष (१९९१ ई.) को शाकाहार वर्ष के रूप में घोषित किया है। समाज के इस शुभ संकल्प में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने भी सक्रिय सहयोग करने का निश्चय किया है।

जैन समाज मूलत: शाकाहारी समाज ही है, पर काल के प्रभाव से इसमें भी कुछ शिथिलता आना आरम्भ हो गई है। यदि जैन समाज समय रहते नहीं चेता तो यह बीमारी और भी अधिक फैल सकती है। अत: समय रहते इस घातक बीमारी का इलाज किया जाना चाहिए।

यद्यपि यह सत्य है कि इस घातक बीमारी की छूत जैनसमाज में लग रही है, पर अभी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम अपना समग्र ध्यान इस ओर ही केन्द्रित कर दें, पर जैन श्रावक श्रावकाचार से तेजी से विरक्त होते जा रहे हैं; अत: यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि उन्हें श्रावकाचार से परिचित कराया जाय, श्रावकाचार को जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया जाय।

इस बात को ध्यान में रखकर युवा फैडरेशन ने इस वर्ष को **शाकाहार श्रावकाचार वर्ष** के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। आवश्यक तैयारी के लिए पर्याप्त समय मिल जावे - इस बात को ध्यान में महावीर जयन्ती १९९१ ई. से महावीर जयन्ती १९९२ ई. तक का समय **शाकाहार श्रावकाचार वर्ष** के लिए सुनिश्चित किया गया है।

जैन समाज ने समाज के कल्याण के लिए समय-समय पर जो भी कार्यक्रम सुनिश्चित किये, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन एवं

उसकी सहयोगी संस्थाओं ने उन सभी में अपनी पूरी शक्ति लगाकर सक्रिय सहयोग किया है। शाकाहार और श्रावकाचार के प्रचार-प्रसार में भी युवा फैडरेशन अपनी भूमिका का निर्वाह करना चाहता है। सही दिशा में सक्रिय युवकों का सहयोग करना सभी समझदार लोगों का नैतिक दायित्व है। यही कारण है कि पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने उसे सब प्रकार से सहयोग करने का निश्चय किया है। अन्य संस्थाओं से भी विनम्र अनुरोध है कि वे भी इस दिशा में सक्रिय हों।

शाकहार के संबंध में जब भी कोई चर्चा चलती है या कुछ लिखा जाता है या पोस्टर आदि प्रकाशित किये जाते हैं तो उनमें शाकाहार को साग-भाजी आदि के रूप में ही बताया जाता है, दिखाया जाता हैं। साग-सब्जी में भी गाजर, मूली आदि जमीकंद व बैंगन, गोभी आदि अभक्ष्य सब्जियाँ ही दिखाई जाती हैं, बताई जाती हैं; जबकि इन्हें जैन श्रावकाचार में अभक्ष्य कहा गया है।

जैनसमाज में शाकाहार का प्रचार करते समय हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि कहीं अनजाने में ऐसा न हो जावे कि हम शाकाहार का प्रचार करने निकलें और हमारे द्वारा अभक्ष्य पदार्थों के खाने का प्रचार हो जाय। अत: शाकाहार को उसके व्यापक अर्थो में देखना होगा, प्रचारित करना होगा। गेहूँ चावल आदि अनाज; आम, अमरूद, सेव, संतरा आदि फल और लोकी आदि सात्विक भक्ष्य सब्जियाँ भी शाकाहार में आती हैं। शाकाहार के रूप में इन्हें ही प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

'गाजर, मूली आदि साग हैं या नहीं ' - इस विवाद में उलझना हमें अभीष्ट नहीं है। इसकारण शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द जोड़ना आवश्यक्र लगा। भले ही वे साग हों, पर श्रावकों द्वारा खाने योग्य नहीं हैं; अत: अभक्ष्य हैं। उनका प्रचार हमें अभीष्ट नहीं है।

श्रावकाचार के अनुकूल शाकाहार का प्रचार ही हमें अभीष्ट है; यही कारण है कि हमने इस वर्ष का नाम शाकाहार श्रावकाचार वर्ष रखा है।

दूसरी बात यह भी है कि शाकाहार शब्द में मांसाहार का निषेध तो हो जाता है, पर मदिरापान का निषेध नहीं होता है। मदिरापान भी एक ऐसी बुराई है कि जिसमें अनन्त जीवों का घात तो होता ही है; नशाकारक होने से मदिरा विवेक को नष्ट करती है, बुद्धि में भ्रम पैदा करती है, स्वास्थ्य को खराब करती है और पारिवारिक सुख शान्ति को समाप्त कर देती है। अत: मांसाहार के समान ही मदिरापान का निषेध भी आवश्यक है।

आज की दुनिया में मदिरा के समान ही मन को मोहित करनेवाले, जीवन को बर्बाद कर देनेवाले और भी अनेक नशीले पदार्थ चल निकले हैं; उन सभी से समाज को बचाना अत्यन्त आवश्यक है।

श्रावकाचार में मांसाहार के निषेध के साथ-साथ मदिरापान का भी निषेध होता है, इसकारण भी शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द जोड़ा गया है।

इनके अतिरिक्त स्थूल रूप से पांच पापों का त्याग और जैनियों के मूल चिह्न रात्रिभोजन त्याग एवं पानी छानकर काम में लेने को भी इसमें शामिल किया गया है। इसप्रकार यह शाकाहार श्रावकाचार वर्ष नाम सार्थक हो जाता है।

हाँ, उक्त संदर्भ में एक प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि श्रावकाचार में शाकाहार तो आ ही जाता है; अत: अकेला श्रावकाचार वर्ष नाम रखने में क्या हानि है ?

हाँ, हानि तो कुछ नहीं; पर शाकाहार शब्द आज विश्व का प्रसिद्ध शब्द है और श्रावकाचार शब्द से सभी जैन भी पूर्णत: परिचित नहीं हैं; अत: शाकाहार शब्द को रखना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी बात यह

भी है कि हम सम्पूर्ण समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहते हैं। अत: उसके द्वारा निश्चित किए गये शब्द को उसी रूप में रखना हमें अभीष्ट है।

हमारा प्रचार क्षेत्र जैनेतर समाज नहीं; मुख्यत: जैनसमाज है। उसका बहुभाग अभी भी पूर्णत: शाकाहारी है, पर उसमें रात्रिभोजन त्याग, पानी छानकर काम में लेने और कंदमूल न खाने के संदर्भ में शिथिलता अवश्य आ गई है। अत: इनके पालन की प्रेरणा को शामिल किए बिना सारा श्रम निरर्थक ही हो जाने की संभावना थी। इसकारण अत्यन्त गहराई से विचार-विमर्श करने के उपरान्त ही यह सुनिश्चित किया गया है कि इस वर्ष को हम **शाकाहार श्रावकाचार वर्ष** के रूप में ही सम्बोधित करें।

जो मांसाहार से एकदम दूर हैं, उस जैन समाज के समक्ष मांसाहार के निषेधपूर्वक शाकाहार के रूप में आलू, बैंगन, मूली, गाजर आदि खाने का उपदेश देना हमें एकदम अटपटा लगता है। मांसाहार के निषेध के साथ-साथ अभक्ष्य पदार्थों को खाने का निषेध भी हमें अभीष्ट है। अकेले शाकाहार शब्द से हमारा उक्त अभिप्राय पूर्णत: व्यक्त नहीं होता था। अत: हमने शाकाहार के साथ श्रावकाचार शब्द जोड़ना आवश्यक समझा है।

ध्यान रहे कि हमने शाकाहार के प्रचार को गौण नहीं किया है, वह तो मुख्य है ही; पर साथ में श्रावकाचार को भी शामिल कर लिया है।

कुछ लोग यह प्रश्न भी उपस्थित करते हैं, शुद्ध शाकाहारी समाज के समक्ष मांसाहार के त्याग की चर्चा करना उचित प्रतीत नहीं होता ?

इसप्रकार का प्रश्न उपस्थित करनेवालों से हमारा एक विनम्र निवेदन है कि क्या श्रावकाचार के संदर्भ में जैनाचार्यों ने मद्य-मांस-मधु के त्याग की चर्चा नहीं की है ? पुरुषार्थसिद्ध्युपाय और

रत्नकरण्डश्रावकाचार जैसे सुप्रसिद्ध श्रावकाचार ग्रंथों में भी विस्तार से मांसादि भक्षण के दोष बताये गये हैं और उनके त्याग की प्रेरणा दी गई है।

ध्यान देने योग्य बातड तो यह है कि मांसादि के त्याग की चर्चा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की चर्चा के उपरान्त सम्यक्चारित्र के प्रकरण में हुई है। अहिंसाव्रत के संदर्भ में चर्चा करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र पुरुषार्थसिद्ध्युपाय नामक ग्रन्थ में बहुत विस्तार से अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत करते हुए मांसाहार का निषेध करते हैं। वहाँ कच्चे मांस, पकाये हुए मांस, स्वयंमृत पशु के मांस, मारकर प्राप्त हुए मांस, शाकाहारी पशु के मांस, मांसाहारी पशु के मांस आदि के सेवन का विस्तार से निषेध किया गया है।

उक्त प्रकरण पर प्रकाश डालने वाले पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के कतिपय छन्द मूलतः इसप्रकार हैं –

"न विना प्राणिविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मांसं भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥६५॥
यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥६६॥
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥६७॥
आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति व पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम् ॥६८॥

प्राणियों के घात के बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए मांसभक्षी पुरुष के द्वारा हिंसा अनिवार्य है। यद्यपि यह सत्य है कि स्वयंमृत बैल और भैंसे से भी मांस प्राप्त हो सकता है, पर उसमें भी निरन्तर उसी जाति के अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं, उनके मन्थन से - घात से हिंसा होती है। जो कच्ची, पकी हुई किसी भी प्रकार

की मांसपेशी खाता है, उसे छूता भी है; वह अनेक जाति के जीव समूह के पिण्ड का घात करता है।''

इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि आचार्य अमृतचन्द्र और समन्तभद्र के पाठक और श्रोता हमारे पाठकों और श्रोताओं से भी हीन स्तर के रहे होंगे ? निश्चित रूप से उस समय का समाज आज के समाज की अपेक्षा अधिक सात्विक, सदाचारी और निरामिष होगा। फिर भी उन्होंने मांसाहार का विस्तार से निषेध किया।

वस्तुत: बात यह है कि जब श्रावकाचार का वर्णन होगा तो उसमें मद्य-मांस-मधु का निषेध होगा ही। हमारे परमपूज्य आचार्यों ने अपने श्रावकाचार संबंधी ग्रंथों में विस्तार से इसकी चर्चा की है। यही कारण है कि आज हमारा समाज शुद्ध शाकाहारी है।

आज भी इसकी चर्चा उतनी ही आवश्यक है कि जितनी उस समय थी; क्योंकि समाज में मांसाहार और मद्यपान के विरुद्ध वातावरण बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

भले ही सीधे मांसाहार का उपयोग हमारी समाज में प्रचलित न हो, पर बहुत से त्रस जीवों का घात तो जाने-अनजाने हम सब से होता ही रहता है। अत: मांसाहार और मद्यपान के निषेध की चर्चा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

जैन परिभाषा के अनुसार त्रस जीवों के शरीर के अंश का नाम ही मांस है। दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं। मांस की उत्पत्ति न केवल त्रस जीवों के घात से होती है, अपितु मांस में निरन्तर ही अनन्त त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं। अत: मांस खाने में न केवल उस एक त्रस जीव की हिंसा का दोष है, जिसको मारा गया है; अपितु उन अनन्त त्रस जीवों की हिंसा का अपराध भी है, जो उसमें निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। अनेक बीमारियों का घर तो मांसाहार है ही।

कुछ लोग कहते है कि शक्ति प्राप्त करना हो तो मांसाहार करना ही होगा; क्योंकि मांस शक्ति का भंडार है। घास-पत्ती खानेवालों को शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी ?

उनसे हम कहना चाहते हैं कि मांसाहारी लोग शाकाहारी पशुओं का ही मांस खाते हैं, मांसाहारियों का नहीं। कुत्ते और शेर का मांस कौन खाता है ? कटने को तो बेचारी शुद्ध शाकाहारी गाय-बकरी ही हैं। जिन पशुओं के मांस को आप शक्ति का भंडार मान बैठे हैं, उन पशुओं में वह शक्ति कहाँ से आई है; यह भी विचार किया है कभी ?

भाई । शाकाहारी पशु जितने शक्तिशाली होते हैं, उतने मांसाहारी नहीं। शाकाहारी हाथी के समान शक्ति किसमें है ? भले ही शेर छल-बल से उसे मार डाले, पर शक्ति में वह हाथी को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। हाथी का पैर भी उसके ऊपर पड़ जावे तो वह चकनाचूर हो जायेगा; पर वह हाथी पर सवार भी हो जावे तो हाथी का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है।

शाकाहारी घोड़ा आज भी शक्ति का प्रतीक है। मशीनों की क्षमता को आज भी अश्वशक्ति (हार्सपावर) से नापा जाता है।

शाकाहारी पशु सामाजिक प्राणी हैं; वे मिलकर झुण्डों में रहते हैं, मांसाहारी झुण्डों में नहीं रहते। एक कुत्ते को देखकर दूसरा कुत्ता भौंकता ही है। शाकाहारी पशुओं के समान मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है, उसे मिलजुल कर ही रहना है, मिलजुल कर रहने में ही संपूर्ण मानव जाति का भला है। मांसाहारी शेरों की नस्लें समाप्त होती जा रही है, उनकी नस्लों की सुरक्षा करनी पड़ रही है; पर शाकाहारी पशु हजारों की संख्या में मारे जाने पर भी समाप्त नहीं हो पाते। शाकाहारियों में जबरदस्त जीवन शक्ति होती है।

मनुष्य के दांतों और आंतों की रचना शाकाहारी प्राणियों के समान

है, मांसाहारियों के समान नहीं। मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी ही है। मनुष्य स्वभाव से दयालु प्रकृति का प्राणी है। यदि उसे स्वयं मार कर मांस खाना पड़े तो १० प्रतिशत लोग भी मांसाहारी नहीं रहेंगे। जो मांस खाते हैं, यदि उन्हें वे बूचड़खाने दिखा दिये जायें, जिनमें निर्दयतापूर्वक पशुओं को काटा जाता है तो वे जीवनभर मांस छुयेंगे भी नहीं। मांस के वृहद उद्योगों ने मांसाहार को बढ़ावा दिया है। यदि टी.वी. पर कत्लखाने के दृश्य दिखाए जावें तो मांस की बिक्री आधी भी न रहे।

मांसाहारी पशु दिन में आराम करते हैं और रात में खाना खोजते हैं, शिकार करते हैं; पर शाकाहारी दिन में खाते हैं और रात में आराम करते हैं। जब शाकाहारी पशुओं के भी सहज ही रात्रिभोजन का त्याग होता है तो फिर मनुष्य का रात्रि में भोजन करना कहाँ तक उचित है ?

प्रश्न – आजकल तो शाकाहारी पशु भी रात को खाने लगे हैं, हमने अनेक गायों को रात्रि में खाते देखा है।

उत्तर – हाँ, खाने लगे हैं, अवश्य खाने लगे हैं; मनुष्यों की संगति में जो पड़ गये हैं। मनुष्यों ने उन्हें भी विकृत कर दिया है। जब किसी पालतू पशु को आप दिन में भोजन दें ही नहीं, रात में ही दें; तो बेचारा क्या करेगा ? किसी वनविहारी स्वतंत्र शाकाहारी पशु को रात्रि में भोजन करते देखा हो तो बताइए ?

भाई, मनुष्य और शाकाहारी पशु प्रकृति से दिवाहारी ही होते हैं। अत: जैनधर्म का रात्रिभोजन त्याग का उपदेश प्रकृति के अनुकूल एवं पूर्ण वैज्ञानिक है।

रात्रिभोजन त्याग के विरुद्ध एक तर्क यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि दो भोजनों के बीच जितना अन्तर रहना चाहिए, दिन के भोजन में वह नहीं मिलता। प्रात: ९-१० बजे खाया और शाम को फिर ४-५

बजे खा लिया। इसप्रकार प्रात: से सायं के भोजन में मात्र ७ घंटे का ही अन्तर रहा और शाम से प्रात: के भोजन में १७ घटे का अन्तर पड़ जाता है।

इस तर्क के उत्तर में हम आपसे पूछते हैं –

"आपकी मोटर रात्रि को कितना पैट्रोल खाती है ?"

"बिलकुल नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वह रात में चलती ही नहीं है, गैरेज में रखी रहती है। गैरेज में रखी मोटर पेट्रोल नहीं खाती।"

"भाई, यही तो हम कहना चाहते हैं कि जब आदमी चलता है, श्रम करता है; तब उसे भोजन चाहिए। जब वह आराम करता है, तब उसे उतना भोजन नहीं चाहिए; जितना के कार्य के समय। भाई, आपको आराम चाहिए; आपके शरीर को आराम चाहिए, आपकी आँखों को आराम चाहिए; इसीप्रकार आपकी आंतों को भी आराम चाहिए। यदि उन्हें पर्याप्त आराम न देंगे तो वे कबतक काम करेंगी ? आखिर मशीन को भी तो आराम चाहिए ही। अत: रात्रिभोजन प्रकृति के विरुद्ध ही है।

डॉक्टर लोग कहते हैं - सोने के चार घंटे पूर्व भोजन कर लेना चाहिए। जब आप रात को १० बजे खाना खाएंगे तो सोएंगे कब ?"

रात्रिभोजन त्याग के समान पानी छानकर पीना भी विज्ञानसम्मत ही है; पानी की शुद्धता पर जितना आज ध्यान दिया जाता है, उतना कभी नहीं दिया गया। अत: आज का युग तो हमारे इस सिद्धान्त के पूर्णत: अनुकूल है। स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ पानी आवश्यक ही है।

– इसप्रकार हम देखते हैं कि जैनाचार एवं जैन विचार प्रकृति के अनुकूल हैं, पूर्णत: वैज्ञानिक हैं; आवश्यकता उन्हें सही एवं सशक्त रूप में प्रस्तुत करने ही है।

आजकल अंडों को शाकाहारी बताकर लोगों को भ्रष्ट किया जा

रहा है। इस प्रचार के शिकार कुछ जैन युवक भी हो रहे हैं। अत: हम सबकी यह सामूहिक जिम्मेदारी है कि इस संदर्भ में समाज को जागृत करें।

शाकाहार तो वनस्पति से उत्पन्न खाद्य को ही कहा जाता है, पर अंडे न तो अनाज के समान किसी खेत में ही पैदा होते हैं और न साग-सब्जी और फलों के समान किसी बेल या वृक्ष पर ही फलते हैं, वे तो स्पष्टत: ही सैनीपंचेन्द्रिय मुर्गियों की संतान हैं।

यह तो हम सब जानते ही हैं कि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के शरीर का अंश ही मांस है; अत: अंडे से उत्पन्न खाद्य पदार्थों का सेवन स्पष्टरूप से मांसाहार ही है।

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि दूध भी तो गाय-बकरी के शरीर का ही अंश है; पर दूध और अंडे में जमीन-आसमान का अन्तर है। दूध के निकलने से गाय-बकरी के जीवन को कोई हानि नहीं पहुँचती; जबकि अंडे के सेवन से अंडे में विद्यमान जीव का सर्वनाश ही हो जाता है। यदि दूध देने वाली गाय-बकरी का दूध समय पर न निकले तो उसे तकलीफ होती है। दूध पिलानेवाली माताओं को यदि कारणवश अपने बच्चों को दूध पिलाने का अवसर प्राप्त न हो तो उन्हें बुखार तक आ जाता है, उन्हें अपने हाथ से दूध निकालना पड़ता है।

इस पर यदि कोई कहे कि भले ही दूध निकालने से गाय को तकलीफ न होती हो, आराम ही क्यों न मिलता हो; पर उसके दूध पर उसके बछड़े का अधिकार है, आप उसे कैसे ले सकते हैं ? क्या यह गाय और बछड़े के साथ अन्याय नहीं है ?

हाँ, इसे एक दृष्टि से अन्याय तो कह सकते हैं; पर इसमें वैसी हिंसा तो कदापि नहीं, जैसी कि मांसाहार में होती है। गहराई से विचार करें तो इसे अन्याय कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि गाय का दूध लेने के बदले में गाय और बछड़े के भोजन-पानी, रहने एवं अन्य सभी

प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है। यदि गाय से दूध प्राप्त न किया जाय तो उसके भोजन-पानी की व्यवस्था भी कौन करेगा ?

गाय की बात तो ठीक, पर बछड़े के साथ तो अन्याय है ही; क्योंकि उसका अधिकार तो छीना ही गया है ।

ऐसी बात भी नहीं है, एक तो उसके बदले में उसे अन्य उपयुक्त साद्य सामग्री खिलाई जाती है, दूसरे गाय को पौष्टिक आहार देकर अतिरिक्त दुग्ध उत्पादन किया जाता है। उस अतिरिक्त दूध को सज्जन लोग प्राप्त करते हैं, बछड़े का हिस्सा तो बछड़े को प्राप्त होता ही है।

यदि वह गाय जंगल में रहती और घास-पत्ती पर ही निर्भर रहती तो उसके एकाध किलो दूध ही होता; पर जब हम उसे खली आदि पौष्टिक पदार्थ खिलाते हैं तो वही गाय चार पाँच किलो दूध देती है। बछड़े को तो उसका एकाध किलो दूध मिल ही जाता है, अतिरिक्त दूध ही सज्जन लोग प्राप्त करते हैं।

इसप्रकार यह तो एकप्रकार से आदान-प्रदान है, इसमें अन्याय भी कहाँ हैं ? यदि इसप्रकार अन्याय की कल्पना करेंगे तो फिर इसप्रकार का आदान-प्रदान तो मनुष्य जाति में भी परस्पर होता ही है, हम दूसरों को उचित पारिश्रमिक देकर उनकी सेवायें प्राप्त करते ही हैं। किसी बेकार व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक देकर रोजगार देने को तो लोक में परोपकार कहा जाता है; शोषण नहीं, अन्याय भी नहीं। इसीप्रकार गाय और बछड़े की सर्वप्रकार से उचित सेवा के बदले में दूध प्राप्त करने को भी परस्पर उपकार के अर्थ में ही देखा जाना चाहिए, अन्याय या शोषण के अर्थ में नहीं। भारतीय संस्कृति में गाय को तो माँ जैसा सम्मान प्राप्त है।

अत: अंडे की तुलना दूध से करना असंगत तो है ही, अज्ञान का सूचक भी है।

इस पर भी यदि कोई कहे कि जिसप्रकार दूध न निकले तो गाय को

तकलीफ हो सकती है या दूध के बदले में हम गाय को चारा-पानी देते हैं; उसीप्रकार मुर्गी का अंडा देना भी उसे सुखकर ही होता है तथा अंडा लेने के बदले हम उसका पालन-पोषण भी करते ही हैं। अत: दूध व अंडा समान ही हुए।

उनका यह कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि जिसप्रकार अंडा मुर्गी की संतान है, उसप्रकार दूध गाय की संतान नहीं है। अत: सच तो यह है कि अंडा दूध के समान नहीं, गाय के बछड़े के समान है। अत: अंडा खाना बछड़े को खाने जैसा ही है।

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि शाकाहारी अंडे से बच्चे का जन्म नहीं हो सकता; अत: वह दूध के समान अजीव ही है, पर यह बात एकदम गलत है; क्योंकि वह मुर्गी के प्रजनन अंगों का उत्पादन है; अत: अशुचि तो है ही साथ ही उत्पन्न होने के बाद भी बढता है, सड़ता नहीं है; अत: सजीव भी है, भले ही पूर्णता को प्राप्त होने की क्षमता उसमें न हो, पर उसे अजीव किसी भी स्थिति में नहीं माना जा सकता है।

दूसरी बात यह भी तो है कि उसका नाम अंडा है, वह अंडाकार है, अंडे के ही रूप-रंग का है; उसके खाने में अंडे का ही संकल्प है। यदि किसी के कहने से उसे अजीव भी मान लिया जाय, तब भी उसके सेवन में अंडे का ही संकल्प होने से मांसाहार का पूरा-पूरा दोष है।

हमारे यहाँ तो आटे के मुर्गे के वध का फल भी नरक-निगोद बताया है; फिर इस साक्षात् अंडे का सेवन कैसे उचित माना जा सकता है ?

अंडा खाने में जो संकोच अभी हमारी वृत्ति में है, एक बार अजीव शाकाहारी अंडे के नाम पर उस संकोच के समाप्त हो जाने पर फिर कौन ध्यान रखता है कि जिस अंडे का सेवन हम कर रहे हैं, वह सजीव है या अजीव ?

अंडे को शाकाहारी बताना अंडे के व्यापारियों का षड्यंत्र है, जिसके शिकार शाकाहारी लोग हो रहे हैं।

एक टूथपेस्ट कम्पनी की बिक्री कुछ वर्षों से स्थिर होकर रह गई थी; अनेक प्रयत्न करने पर भी, भरपूर प्रचार-प्रसार करने पर भी बढती ही न थी। अत: पुराने सेल्स मैनेजर को हटाकर नये सेल्स मैनजर की नियुक्ति की गई। उसने देखा कि जिन तक पहुँचना चाहिए था, उन सभी तक यह टूथपेस्ट पहुँच चुका है; अत: अब नये बाजार की तो कोई गुंजाइश है नहीं। अत: उसने टूथपेस्ट का मुँह सवाया कर दिया। परिणाम यह निकला कि टूथपेस्ट की बिक्री सवाई हो गई; क्योंकि लोगों द्वारा टूथपेस्ट के दबाने पर जितना माल पहले निकलता था, बड़ा मुँह हो जाने पर उससे सवाया निकलने लगा। अत: जो पेकेट एक माह में समाप्त होता था, वह २४ दिन में ही समाप्त होने लगा। इसे आप सेल्स मैनेजर की होशियारी या चालाकी जो कुछ भी कहना चाहें, कहें; पर टूथपेस्ट की बिक्री तो बढ ही गई।

इसीप्रकार जब अंडे के व्यापारियों ने देखा कि अंडे हम सभी मांसाहारियों तक तो पहुँचा ही चुके हैं; अत: अब अंडों की और अधिक बिक्री बढना संभव नहीं है। अब नया बाजार खोजने के लिए शाकाहारियों में घुसपैठ करना चाहिए।

यह तो वे अच्छी तरह जानते ही थे कि शाकाहारी अपने खान-पान और व्रत-नियमों में बहुत कट्टर होते हैं; अत: अंडा खाने के लाभ बता-बताकर उन्हें लुभाया नहीं जा सकता। हाँ, यदि अंडे को शाकाहारी बताया जाय तो अवश्य सफलता मिल सकती है, शाकाहारियों में घुसपैठ की जा सकती है। बस,उन्होंने बड़े ही जोर-शोर से यह प्रचार करना आरंभ कर दिया कि अंडे दो प्रकार के होते हैं – शाकाहारी और मांसाहारी।

यह उनकी होशियारी कहें या चालाकी, पर वे अपनी चाल में सफल हो गये लगते हैं; क्योंकि बहुत से शाकाहारी इस दुष्प्रचार के शिकार हो रहे हैं। अभी स्थिति उतनी भयावह नहीं हुई कि कुछ किया

ही न जा सके, पर यदि हम अभी से सावधान नहीं हुए तो कुछ दिनों में हम उस स्थिति में पहुँच जावेंगे कि जब कुछ करना संभव ही न रहेगा।

अत: शाकाहारी अंडे के दुष्प्रचार से शाकाहारियों को बचाना हम सबका प्राथमिक कर्तव्य है। कहीं ऐसा न हो कि एक ओर हम छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ते-झगड़ते रहें और दूसरी ओर हमारी आगामी पीढ़ियाँ पूर्णत: संस्कारहीन, तत्त्वज्ञानहीन और सदाचारहीन हो जाँय ? यदि ऐसा हुआ तो इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।

मद्य और मांस के साथ जैनदर्शन में मधु के त्याग का भी उपदेश दिया गया है। मधु मधुमक्खियों का मल है, उसके विनाश से उत्पन्न होता है और इसमें निरन्तर अंसख्य जीव उत्पन्न होते रहते हैं। अत: यह भी खाने योग्य नहीं है।

जैनाहार विज्ञान का मूल आधार अहिंसा है। सर्वप्रथम तो हमें ऐसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए, जो पूर्णत: अहिंसक हो। यदि पूर्णत: अहिंसक आहार से जीवन संभव न हो या हमसे इसका पालन संभव न हो तो जिसमें कम से कम हिंसा हो – ऐसे आहार से काम चलाना चाहिए।

आहार के लिए सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के घात का तो सवाल ही नहीं उठता, सभी त्रसजीवों की हिंसा से भी पूरी तरह बचना चाहिए। स्थावर जीवों के विनाश से भी यथासाध्य बचना आवश्यक है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही जैनाहार सुनिश्चित किया गया है।

सर्वप्रथम तो गेहूँ, चावल आदि अनाज और चना आदि दालों एवं तिलहन आदि के उपयोग का उपदेश दिया गया है; क्योंकि ये पूर्णत: अहिंसक आहार है। स्थावर जीवों में विशेषकर वनस्पतिकायिक जीवों के शरीर का ही आहार में उपयोग होता है। अनाज, तिलहन और दालें तभी उत्पन्न होती हैं, जब उनका पौधा स्वयं अपनी आयु

पूर्णकर सूख जाता है। यदि हरे-भरे पौधों को काट दिया जाय तो अनाज भी सही रूप में पैदा नहीं होगा। अत: उसका खेत में ही खड़े-खड़े ही सूख जाना आवश्यक है। अत: अनाज, दालें व तिलहन पूर्णत: अहिंसक आहार हैं।

यद्यपि गेहूँ आदि पूर्णत: अजीव है; तथापि उनको बोने पर वे उगते हैं, पर चावल उनसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि छिलका अलग हो जाने से वे बोने पर उगते भी नहीं हैं। यही कारण है कि उनका उपयोग भगवान की पूजन में भी किया जाता है।

जीव-जन्तुओं से रहित बिना घुना अनाज, चावल, दालें एवं तिलहन ही सर्वोत्तम शाकाहार हैं। इन्हीं में मेवा-सूखे फलों (ड्राईफ्रूट्स) को भी समझना चाहिए। इसके बाद वृक्ष की डाली पर ही पके हुए और पक कर स्वयं गिरे हुए फलों का क्रम आता है; क्योंकि उनके ग्रहण में भी किसी भी जीव-जन्तु को कोई पीड़ा नहीं पहुँचती है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि फल तो गेहूँ आदि के समान ही निरापद हैं, इन्हें उसके बाद के क्रम में क्यों रखा है।

पके हुए फल सरस होने से गीले होते हैं। अत: उनमें त्रस जीवों के शीघ्र उत्पन्न होने की संभावना रहती है। यही कारण है कि उन्हें अनाज के समान निरापद आहार स्वीकार नहीं किया गया है। इसके बाद साग-भाजी का नम्बर आता है; क्योंकि साग-भाजी तो निश्चितरूप से हरी ही होती है। उसे सचित्त अवस्था में ही पेड़-पौधों से तोड़ा जाता है। अप्रतिष्ठित वनस्पति होने से भले ही उनमें जीव न हों, पर उनके तोड़ने से उस पेड़ या पौधे को पीड़ा तो पहुँचती ही है।

पेड़-पौधों की जड़, जिसे कन्दमूल कहते हैं, खाने का पूर्णत: निषेध है; क्योंकि जड़मूल के समाप्त हो जाने पर तो पेड़-पौधे का सर्वनाश अनिवार्य है। कन्दमूल साधारण वनस्पति होने से उसमें अनन्त जीव

भी रहते हैं। इसकारण भी उनके खाने का निषेध है।

जैनाचार में पाँच प्रकार के अभक्ष्य बताये गये हैं – त्रसघातमूलक, बहुघातमूलक, नशाकारक, अनुपसेव्य एवं अनिष्ट।

जिनमें त्रसजीवों का घात होता है, ऐसे मांसादि त्रसघातमूलक अभक्ष्य हैं। जिनमें बहुत से स्थावर जीवों का घात होता है, ऐसे जमीकन्द आदि बहुघातमूलक अभक्ष्य हैं। जो नशा उत्पन्न करते हैं, ऐसे मद्यादि पदार्थ नशाकारक अभक्ष्य हैं। जिनका सेवन लोकनिन्द है, जो भले पुरुषों के द्वारा खाने योग्य नहीं हैं; ऐसे लार, मल, मूत्रादि अनुपसेव्य अभक्ष्य हैं और जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हों, वे अनिष्ट अभक्ष्य हैं; जैसे मधुमेह की बीमारी वालों को चीनी आदि मीठे पदार्थ।

उक्त अभक्ष्यों के वर्गीकरण से जैनाहार की वैज्ञानिकता स्पष्ट होती है और यह स्पष्ट होता है कि जैनाहार अहिंसामूलक है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि अनिष्ट अभक्ष्य में हिंसा और अहिंसा का क्या संबंध है; क्योंकि मधुमेह वाले को जिसमें रंचमात्र भी हिंसा नहीं है, ऐसे मीठे पदार्थ भी अभक्ष्य होते हैं।

जो पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हों, उन पदार्थों का सेवन तीव्रराग बिना संभव नहीं है। यह तो सर्वविदित ही है कि जैन शास्त्रों में रागभाव को भावहिंसा कहा है। अत: अनिष्ट नामक अभक्ष्य में द्रव्यहिंसा भले ही न हो, पर भावहिंसा तो है ही। एक दृष्टि से द्रव्यहिंसा भी है; क्योंकि उसमें भले ही दूसरे के द्रव्यप्राणों का घात न होता हो, पर अस्वास्थ्यकर होने से अपने द्रव्य प्राणों का घात तो होता ही है। पीड़ा होना भी एकदेश घात ही है।

शाकाहार के प्रचार-प्रसार के संदर्भ में भी एक बात विचारणीय है। शाकाहार के पक्ष में प्रचार करते समय कुछ लोग मात्र यही बात करते हैं कि शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अनुकूल है, सस्ता है; जबकि

मांसाहार अनेक बीमारियों का घर है और मंहगा भी है; पर वे इस बात पर ध्यान ही नहीं देते कि वह अपवित्र है, अनैतिक है, हिंसक है एवं अनंत दु:खों का कारण है।

इसीप्रकार कुछ लोग मांसाहार की अपवित्रता व अनैतिकता पर तो वजन देते हैं, पर उससे होने वाली लौकिक हानियों पर प्रकाश नहीं डालते।

जनता में सभी प्रकार के लोग होते हैं। कुछ लोग तो धर्मभीरु अहिंसक वृत्ति के नैतिक लोग होते हैं, जो अपवित्र और हिंसा से उत्पन्न पदार्थों को भावना के स्तर पर ही अस्वीकार कर देते हैं। इसप्रकार के लोग उनसे होनेवाले लौकिक लाभ-हानि के गणित से प्रभावित नहीं होते। पर कुछ लोगों का दृष्टिकोण एकदम भौतिक होता है। वे हर बात को लौकिक व आर्थिक लाभ-हानि से आंकते हैं और उसी के आधार पर किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। ऐसे लोगों को जबतक स्वास्थ्य संबंधी लाभ-हानि व आर्थिक लाभ-हानि न बताई जाये, तबतक वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते।

जब हमें सभीप्रकार के लोगों में शाकाहार का प्रचार करना है तो संतुलित रूप से दोनों ही दृष्टियों से प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। मांसाहार में होनेवाली आर्थिक एवं स्वास्थ्य संबंधी हानि और उसके त्याग से होनेवाले लाभों का दिग्दर्शन किया जाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक नैतिकता एवं अहिंसा के आधार पर भावनात्मक स्तर पर मांसाहार से अरुचि कराना भी है। दोनों स्तरों पर किये गये प्रचार-प्रसार से ही अपेक्षित सफलता प्राप्त होगी।

शाकाहार और श्रावकाचार के स्वरूप, उपयोगिता और आवश्यकता पर विचार करने के उपरान्त अब उन परिस्थितियों पर विचार अपेक्षित है, जिनके कारण मांसाहार को प्रोत्साहन मिल रहा है और शाकाहार व श्रावकाचार की निरन्तर हानि हो रही है। उन उपायों

पर भी विचार अपेक्षित है, जो शाकाहार और श्रावकाचार के प्रचार-प्रसार का मार्ग प्रशस्त करते हों।

आज बाजार से तैयार सामग्री लाकर खाने-पीने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ रही है। महिलाओं के कार्यक्षेत्र में आ जाने से इस प्रवृत्ति को और अधिक प्रोत्साहन मिला है। अब कोई घर में खाना बनाकर खाना ही नहीं चाहता है, सब तैयार खाने के लिए बाजार की ओर ही दौड़ते हैं। न केवल हलवाइयों की दुकानों या सार्वजनिक भोजनालयों में तैयार भोजन की ओर, अपितु आज तो तैयार भोज्य सामग्री के बड़े-बड़े उद्योग खड़े हो रहे हैं। यह सब पश्चिम की नकल पर हो रहा है।

इसप्रकार की सामग्री के सेवन में जाने-अनजाने मद्य-मांस-मधु का सेवन होता रहता है। इसीप्रकार बाजारों से तैयार श्रृंगार सामग्री में भी ऐसे पदार्थ शामिल रहते हैं कि जिनके उत्पादन में हिंसा तो होती ही है, क्रूरता भी होती है।

जो लोग पूर्णत: शाकाहारी हैं, अहिंसक हैं और अहिंसक एवं शाकाहारी बने रहना चाहते हैं; वे भी जाने-अनजाने में उन वस्तुओं को खाते-पीते रहते हैं, उन श्रृंगार सामग्रियों का उपयोग करते हैं, जिनमें हिंसक और अपवित्र वस्तुओं का समिश्रण रहता है, प्रकारान्तर से मद्य-मांस-मधु का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जाता है। इसप्रकार वे भी मांसाहार में सहभागी हो जाते हैं।

यदि शाकाहारी समाज को इसप्रकार के मांसाहार, मद्यपान एवं हिंसक श्रृंगार सामग्री के प्रयोग से बचाना है तो हमें बाजार में ऐसे उत्पादन उपलब्ध कराने होंगे, जिनमें मांस न हो, चर्बी न हो, अंडों का प्रयोग न हुआ हो, मद्य का उपयोग न हुआ हो, मधु का उपयोग न हुआ हो और जो हिंसा से उत्पन्न न होते हों; क्योंकि अब यह तो सम्भव रहा नहीं कि किसी को बाजार में उपलब्ध भोज्य सामग्री एवं श्रृंगार सामग्री

के प्रयोग से रोका जा सके। हाँ, यदि हम उन पदार्थों के स्थान पर अन्य अहिंसक पदार्थ उसी कीमत पर या उससे भी कम कीमत पर उपलब्ध करा सकें तो सफलता अवश्य मिल सकती है।

इसके लिए उद्योगपतियों को आगे आना होगा। इस लड़ाई को अनेक मोर्चों पर लड़ना होगा। उद्योगपति अहिंसक खाद्य सामग्री एवं श्रृंगार सामग्री तैयार करें, साधु-सन्त एवं प्रभावशाली प्रवक्ता विद्वान इसके लिए समाज का मानस तैयार करें, चिकित्सक लोग भी लोगों को यह बतावें कि स्वास्थ्य के लिए शाकाहार ही श्रेष्ठ आहार है। जितना प्रभाव एक चिकित्सक डाल सकता है, उतना किसी साधु-सन्त या प्रवक्ता विद्वान का नहीं होता है; क्योंकि लोगों को जीवन और स्वास्थ्य की जितनी चिन्ता रहती है, उतनी धर्म-कर्म की नहीं, नैतिकता की भी नहीं।

अनुसन्धानकर्त्ताओं का भी एक कर्तव्य है कि वे भोज्यसामग्री के इसप्रकार के फामूर्ले तैयार करें कि जिनमें खर्च कम हो और स्वास्थ्य के अनुकूल विटामिन आदि सभी पदार्थ उसमें आ जावें। इसप्रकार के फामूर्लों के आधार पर उद्योगपति खाद्य सामग्री तैयार करें, साधु-संत जनमानस तैयार करें, विद्वान लोग साहित्य तैयार करें और कार्यकर्त्ता उसे जन-जन तक पहुँचायें; तब कहीं जाकर कुछ सफलता हाथ लगेगी।

यह किसी एक व्यक्ति का काम नहीं है, अपितु सम्पूर्ण समाज का कार्य है। प्रसन्नता की बात है कि सम्पूर्ण समाज ने इस काम को अपने हाथ में लिया है, इसके लिए एक वर्ष का समय सुनिश्चित किया है; पर यह कार्य एक वर्ष में होने वाला नहीं है, इसमें तो जीवन लगाना होगा, तब कहीं कोई सफलता मिलेगी। एक वर्ष में तीन माह तो बात करते-करते ही निकल गये हैं। इसीलिए तो इसका समय महावीर जयंती १९९१ ई. से महावीर जयंती १९९२ ई. तक निश्चित किया है।

यह एक वर्ष तो विचार-विमर्श करने में, योजनायें बनाने में,

वातावरण बनाने में ही लग जाएगा। अत: इस काम को काल की सीमा में बांधना उपयुक्त नहीं है। कुछ सभाएं व भाषणबाजी कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेना भी उपयुक्त नहीं है। आशा है समाज का नेतृवर्ग इसे गंभीरता से लेगा और कुछ दीर्घकालीन योजनाएँ बनाएगा।

"समाज क्या करेगा और क्या कर पावेगा"– यह तो भविष्य ही बताएगा; पर हमारा व्यक्तिगत कर्तव्य भी है कि हम स्वयं पूर्णत: शुद्ध शाकाहारी बनें, अपने परिवार को शाकाहारी बनावें; जो भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में आते हों, उन्हें शाकाहारी बनाने का प्रयास करें।

यह तो सुनिश्चित ही है कि शुद्ध सात्विक सदाचारी जीवन के बिना सुख शान्ति प्राप्त होना तो दूर, सुख शान्ति प्राप्त करने का उपाय समझने की पात्रता भी नहीं पकती। अत: जो आत्मिक शांन्ति प्राप्त करना चाहते हैं, आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं; प्रकारान्तर से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति करना चाहते हैं, आत्मानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं; उन्हें भी इस ओर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए, उनका भी जीवन सात्विक होना चाहिए, सदाचारी होना चाहिए। 'यह तो जड़ की क्रिया है'– यह कहकर इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है।

लौकिक सुख शान्ति के अभिलाषियों को भी शाकाहारी तो होना ही होगा, अन्यथा उनका जीवन एवं परिकर भी विकृत हुए बिना नहीं रहेगा। अत: यह सुनिश्चित ही है कि लौकिक और पारलौकिक – दोनों ही दृष्टि से शाकाहारी-श्रावकाचारी होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

सभी भव्यजन शाकाहार और श्रावकाचार को अपने जीवन में अपनाकर सुख-शान्ति प्राप्त करें – इस मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००	३९. मैं कौन हूँ	७.००
२. समयसार अनुशीलन भाग-१	२५.००	४०. निमित्तोपादान	३.५०
३. समयसार अनुशीलन भाग-२	२०.००	४१. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
४. समयसार अनुशीलन भाग-३	२०.००	४२. मैं स्वयं भगवान हूँ	४.००
५. समयसार अनुशीलन भाग-४	२०.००	४३. ध्यान का स्वरूप	४.००
६. समयसार अनुशीलन भाग-५	२५.००	४४. रीति-नीति	३.००
७. समयसार का सार	३०.००	४५. शाकाहार	३.००
८. गाथा समयसार	१०.००	४६. भगवान ऋषभदेव	४.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००	४७. तीर्थंकर भगवान महावीर	२.५०
१०. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-१	३५.००	४८. चैतन्य चमत्कार	४.००
११. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-२	३५.००	४९. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग-३	२५.००	५०. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
१३. प्रवचनसार का सार	३०.००	५१. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
१४. नियमसार अनुशीलन भाग-१	२५.००	५२. अनेकान्त और स्याद्वाद	२.००
१५. छहढाला का सार	१५.००	५३. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	५.००
१६. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	१५.००	५४. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
१७. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	८.००	५५. जिनवरस्य नयचक्रम	१०.००
१८. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	५६. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	७.००
१९. परमभावप्रकाशक नयचक्र	२०.००	५७. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
२०. चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००	५८. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
२१. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५.००	५९. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
२२. धर्म के दशलक्षण	१६.००	६०. समयसार पद्यानुवाद	३.००
२३. क्रमबद्धपर्याय	१५.००	६१. योगसार पद्यानुवाद	०.५०
२४. बिखरे मोती	१६.००	६२. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
२५. सत्य की खोज	२०.००	६३. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
२६. अध्यात्म नवनीत	१५.००	६४. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
२७. आप कुछ भी कहो	१२.००	६५. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
२८. आत्मा ही है शरण	१५.००	६६. अर्चना जेबी	१.५०
२९. सुक्ति-सुधा	१८.००	६७. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	१.२५
३०. बारह भावना : एक अनुशीलन	१५.००	६८. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	१.००
३१. दृष्टि का विषय	१०.००	६९. बालबोध पाठमाला भाग-२	३.००
३२. गागर में सागर	७.००	७०. बालबोध पाठमाला भाग-३	३.००
३३. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	८.००	७१. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१	४.००
३४. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१०.००	७२. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२	४.००
३५. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००	७३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३	४.००
३६. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००	७४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१	५.००
३७. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००	७५. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२	६.००
३८. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१५.००		

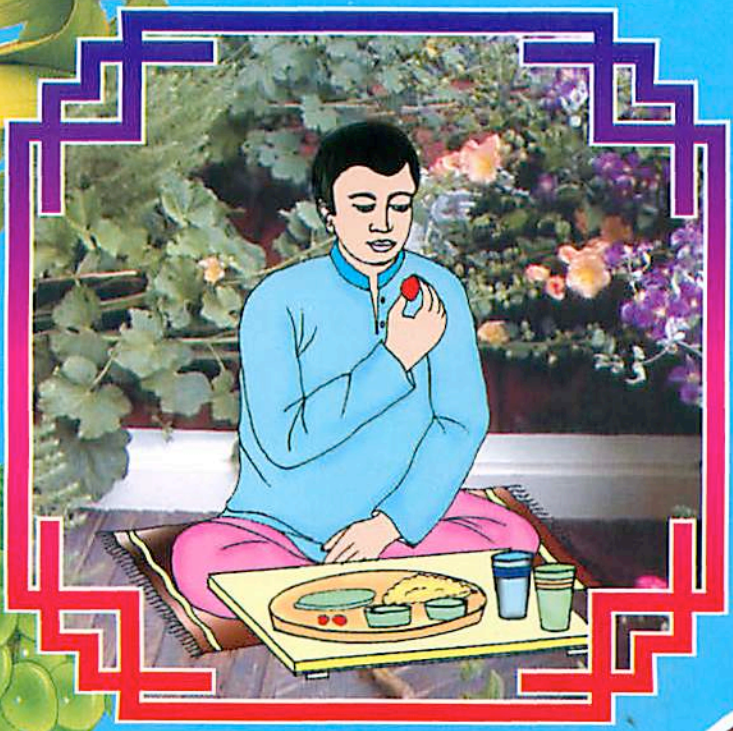

शाकाहार

जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल